राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग
न्यायपालिका में आरक्षण संबंधी रिपोर्ट

न्यायपालिका लोकतंत्र के तीन अति महत्वपूर्ण स्तंभों में से एक है । न्यायपालिका एक अहम भूमिका अदा करती है । यह कार्यपालिका और विधानपालिका की मनमानी पर अंकुश लगाती है । यह संवैधानिक सुरक्षणों, समानता का अधिकार, स्वतंत्रता और सम्पत्ति, भाषण एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के एक प्रहरी के रूप में कार्य करती है । यह भारतीय संविधान के मूल ढांचे की सुरक्षा के लिए भी अनिवार्य है । माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा संविधान और कानून की व्याख्या देश का अन्तिम कानून होता है । न्यायपालिका की स्वतंत्रता सुनिश्चित करने के क्रम में संविधान के अनुच्छेद 124, 217, 233, 234 और 235 के अन्तर्गत विशिष्ट और विस्तृत प्रावधान किए गए हैं । तथापि, न्यायपालिका का वर्तमान ढांचा सामाजिक समानता और न्याय के राष्ट्रीय उद्देश्य को पूरा नहीं करता है ।

विधि एवं न्याय के प्रशासन का न्यायपालिका के सामाजिक दर्शन के साथ गहरा संबंध है जो क्रमशः न्याय प्रदान करने वालों की सामाजिक पृष्ठभूमि से संबद्ध है । न्यायाधीश ही उच्च मनुष्य नहीं होते हैं । तथापि, वे अपने निर्णयों में वस्तुनिष्ठ एवं उपयुक्त हो सकते हैं, उन पर पसन्द और नापसन्द/पूर्वग्रह का प्रभाव पड़ता है । सामाजिक संघर्षों के चलते परिणामी कटुता से उनके निर्णय प्रभावित होने की संभावना बनी रहती है यदि वे उनके अपने प्रतिद्वंदी समुदायों की भावनाओं को शेयर करते हैं ।

दुर्भाग्य से उच्च न्यायपालिका का गठन यह प्रदर्शित करता है कि अधिकांश न्यायाधीशों को सोसायटी के उन्हीं वर्गों से लिया जाता है जो युगों पुराने सामाजिक पूर्वग्रह से ग्रस्त हैं । अधिकांश मामलों में ऐसे न्यायाधीशों के वर्ग हित और सामाजिक अवरोध, उन्हें उनके निर्णयों में बौद्धिक ईमानदारी और सत्यनिष्ठा को पूर्ण रूप से अदा

करने की अनुमति प्रदान नहीं करते । सामुदायिक भेदभाव एक आधार है जिसे दंड प्रक्रिया संहिता द्वारा भी मान्यता है जिसमें विशिष्ट प्रावधान न्यायपालिका में सामुदायिक भेदभाव की संभावना प्रकट करते हैं । हाल ही में अनुसूचित जाति के संबंध में मद्रास उच्च न्यायालय के न्यायाधीश सी.एस. कर्णन का एक मामला नोटिस में आया है जो यह दर्शाता है कि उन जैसे महत्वपूर्ण व्यक्ति को भी ऊंची जातियों के साथी न्यायाधीशों के हाथों शिकार होना पड़ रहा है । दूसरे मामले में, छत्तीसगढ़ के 17 जिला जज, जो सभी अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के हैं, को कथित रूप से बिना किसी वैध कारणों से सेवा से हटा दिया गया था । जब उनकी पांच से दस वर्षों की सेवा थी और वे उच्च न्यायालय के जज के रूप में उन्नयन के लिए परिपक्व थे ।

जब कार्यपालिका और विधानपालिका को संवैधानिक आरक्षण के दायरे में लाया जाता है तो यह स्वाभाविक है कि न्यायपालिका, संविधान के सुरक्षण के लिए अधिदेशाधीन लोकतंत्र के तीसरे स्तंभ को भी आरक्षण के सिद्धान्त का अनुसरण करना चाहिए अन्यथा इससे लोकतंत्र के तीन स्तंभों में संदिग्ध प्रथक्करण का सृजन होगा । न्यायपालिका को एक अपवाद के रूप में श्रेष्ठ होने की अनुमति नहीं दी जा सकती । न्यायपालिका में आरक्षण से विधानपालिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका के बीच संवैधानिक संतुलन आएगा तथा सामाजिक न्याय और समानता का उद्देश्य ठीक प्रकार से पूरा होगा ।

विधि विशेषज्ञ, विशेषकर कि किस प्रकार अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों के विधि विशेषज्ञ स्वयं को संतुष्ट नहीं कर पाए कि किस प्रकार अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति को पदोन्नति में आरक्षण के मामले को इन्दिरा साहनी मामले में निपटाया गया और असंवैधानिक अभिनिर्धारित किया गया, जो केवल अन्य पिछड़े वर्गों से संबंधित मामला था न कि अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति से ।

इसके अतिरिक्त, न्यायालय इस तथ्य के बावजूद अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के लोगों की हत्या के दोषी व्यक्तियों को मृत्युदंड देने के प्रति संवेदनशील नहीं होते हैं । उच्चतम न्यायालय की संविधान खंडपीठ ने बच्चन सिंह के मामले में निर्णय दिया था कि जाति पूर्वग्रहों के कारण हत्या को दुर्बल से दुर्बलतम मामला माना जाना चाहिए जिसमें मृत्युदंड का प्रावधान है । इससे अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों के प्रति न्यायालयों की उदासीनता प्रकट होती है ।

समाज के कमज़ोर वर्गों के अधिकारों और हितों के मामले में, अब तक किए गए न्यायिक निर्णयों से बेमेल विचारों से भ्रम पैदा हुआ है जिसके कारण कम मामलों का निपटान हो पाया और अधिक मामले अनसुलझे रहे हैं । अब तक न्यायपालिका समाज के वंचित वर्गों के प्रति न तो समानुभूतिक रही है और न ही निष्पक्ष । कमज़ोर वर्गों के संबंध में सकारात्मक कार्रवाई के पक्ष में लिए गए निर्णय कम अवधि के हैं, केवल "स्टेयर डिसीसिस" सिद्धान्त के विरुद्ध जाने वाले छोटे न्यायालयों/ छोटी खंडपीठों द्वारा परिणामी निर्णय/निर्णयों द्वारा निर्णयों से उलट दिए जाते हैं । समान रूप से पक्षपाती नौकरशाही अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति को प्रभावित करने वाले ऐसे प्रतिकूल निर्णयों को लागू करने में कोई समय बर्बाद नहीं करती है ।

उच्चतम न्यायालय ने अब तक प्रतिनिधिक ढांचे के दृढीकरण के क्रम में धार्मिक पृष्ठभूमि और प्रादेशिक आबंटन के आधार पर प्रतिनिधित्व की ओर कुछ ध्यान दिया है परन्तु उच्च न्यायपालिका के गठन में सामाजिक पृष्ठभूमि को इस बहाने से कभी भी विचारण में नहीं लिया गया कि इससे साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की शुरुआत होगी । ईमानदारी से काम करना सुनिश्चित करने के क्रम में यह अनिवार्य है कि समाज के सभी प्रमुख वर्गों के समान प्रतिनिधित्व के लिए उन्हें न्यायपालिका में प्रतिनिधित्व दिया जाता है और ऐसा करने के लिए हमारे संविधान में कोई रोक नहीं है । न्यायपालिका में वे सदस्य होने चाहिए जिन्हें पिछड़े वर्गों की समस्याओं का प्रत्यक्ष ज्ञान और अनुभव हो और न्याय प्रदान करके उन समस्याओं को हल करने में वे व्यक्तिगत रूप से दिलचस्पी

लेने वाले हों । स्वायत्तता के नाम पर न्यायपालिका परम सत्ता बनने का प्रयास करती है जो संविधान का उद्देश्य नहीं था । ऐसी आकांक्षी संस्था को सामाजिक वातावरण की वास्तविकता का प्रदर्शन करना चाहिए जिसमें न्यायपालिका को बनाया गया है । अन्ततः न्यायपालिका को लोगों की आकांक्षाओं को परिलक्षित और पूरा करना चाहिए । यह न्यायिक निर्णयों के माध्यम से अपने आपको संवैधानिक प्रावधानों के दायरे से बाहर रख सकती और लोकतंत्र के तीनों स्तम्भों से प्रथक नहीं हो सकती ।

इसके अतिरिक्त, संविधान में कोई बात रक्षा सेवाओं और न्यायपालिका जैसे कुछ क्षेत्रों में आरक्षण की नीति लागू न करने के सरकार के आधार का समर्थन नहीं करती है ।

यह मानने का कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है कि अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के सदस्यों में कोई गुणागुण नहीं हैं । ऐसा विचार किसी सुधारातीत धर्मान्ध का ही हो सकता है । विधि व्यवसाय ग्रहण करने वाले अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़े वर्ग के उम्मीदवारों को प्रोन्नत करने की दृष्टि से भारत सरकार और राज्य सरकारों द्वारा शुरु किए गए समाज कल्याण उपायों तथा नेशनल लॉ स्कूलों सहित व्यावसायिक संस्थाओं में आरक्षण के प्रावधानों सहित इन वर्गों के ऐसे उम्मीदवारों का कोई अभाव नहीं है जो जजों की नियुक्ति हेतु विचारण के लिए पात्र और अर्हता प्राप्त हैं । अन्य अवसरों सहित सरकार और सार्वजनिक उपक्रमों के लिए उपस्थित होने वाले अधिवक्ताओं के पैनल में रखते हुए उन्हें दिए गए अवसरों से ये उम्मीदवार न्यायिक कार्य को सफलतापूर्वक संभालने में समर्थ हो गए हैं । यह उल्लेखनीय है कि उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों में न्यायाधीशों के पद भरने के लिए बहुतायत जनशक्ति उपलब्ध है ।

न्यायपालिका में आरक्षण प्रदान करने का उपाय एक सुदृढ़ नीति है । सरकार को, "खरगोश की चाल और शिकारी कुत्तों के साथ शिकार करना" वाली कहावत

अर्थात् असंभव कार्य की अपनी नीति में बदलाव करने की जरुरत है । सरकार को उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय को अनुच्छेद 12 की परिभाषा के दायरे में "राज्य" के रूप में मानते हुए उनमें आरक्षण सुनिश्चित करने के लिए संविधान में संशोधन लाए जाने के लिए एक पुरजोर राजनैतिक प्रतिबद्धता की आवश्यकता है ।

यह एक माना हुए तथ्य है कि न्यायपालिका राज्य का एक भाग है ।

अनुच्छेद 12, अनुच्छेद 13 और अनुच्छेद 37 में "राज्य" शब्द का वही अर्थ है । पृष्ठ संख्या 830 (1973 सुप्पः एससीआरआई) पर केशवानन्द भारतीय के मामले में माननीय न्यायाधीश मैथ्यू का निर्णय ।

"राज्य" शब्द की परिभाषा भाग-III और भाग-IV दोनों के प्रयोजनार्थ समान है जबकि आयरिश संविधान का अनुच्छेद 45 ओयरिचतास अर्थात् विधानमंडल के मार्गदर्शन के लिए ही निर्देश देता है, हमारे संविधान के अनुच्छेद 38 से 51 सभी अनुच्छेद 12 में यथा परिभाषित "राज्य" सम्बोधित हैं । वह न्यायिक प्रक्रिया भी "स्टेट एक्शन" है जो स्पष्ट प्रतीत होती है । अनुच्छेद 20 (2) यह प्रावधान करता है कि किसी व्यक्ति को एक ही अपराध के लिए एक बार से अधिक अभियोजित नहीं किया जाएगा और उसे सजा नहीं दी जाएगी, का न्यायपालिका द्वारा आमतौर पर उल्लंघन किया जाता है तथा इस आदेश को रद्द करने के लिए अनुच्छेद 32 के अधीन एक रिट स्वीकार्य होनी चाहिए । नरेश बनाम महाराष्ट्र राज्य (1966(3) (एससीआर 744) हिदायतुल्ला जे. ने अपने विसम्मत निर्णय में माना – मैं ठीक सोचता हूं – कि न्यायपालिका संविधान के अनुच्छेद 12 में "राज्य" शब्द की परिभाषा में राज्य भी है । (शेली बनाम करेमेर, 334 यू.एस., 1; बुधन बनाम महाराष्ट्र राज्य 1955(1) एससीआर 1045) देखें । पृष्ठ 834 पर" ।

उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों में अनुसूचित जाति/अनुसूचित

जनजाति के कर्मचारियों के प्रतिनिधित्व का जहां तक संबंध है, स्थिति बहुत ही निराशाजनक है जिनका ब्योरा दिनांक 15-3-2000 को संसद में प्रस्तुत करिया मुंडा की रिपोर्ट में दिया गया है, निम्नवत् है:

क्र.सं.	उच्च न्यायालय	कर्मचारियों की कुल संख्या	अनुसूचित जाति कर्मचारी		अनुसूचित जनजाति कर्मचारी	
			संख्या	प्रतिशतता	संख्या	प्रतिशतता
1.	लाहाबाद	2583	*	*	*	*
2.	आन्ध्र प्रदेश	1304 (231 ओबीसी)	106	8.12	9	0.69
3.	बर्म्ब	2171	238	10.96	23	1.06
4.	कलकत्ता	563	38	6.75	8	1.42
5.	दिल्ली	*	*	*	*	*
6.	गुवाहाटी	462	41	8.87	37	8.00
7.	गुजरात	685	60	8.76	43	6.28
8.	हिमाचल प्रदेश	351	55	15.67	2	0.57
9.	जम्मू एवं कश्मीर	354	22	6.22	11	3.11
10.	कर्नाटक	1253	103	8.22	20	1.60
11.	केरल#	400	30	7.50	-	-
12.	मध्य प्रदेश	1224 (ओबीसी 271)	48	3.92	21	1.72
13.	मद्रास	1277	146	11.43	2	0.15
14.	उड़ीसा	595	68	11.43	5	0.84
15.	पटना	1151	115	10	49	4.25
16.	पंजाब और हरियाणा	684	70 (अजा+अजजा)			
17.	राजस्थान	933	42	4.50	5	0.54
18.	सिक्किम	107	9	8.41	37	31.58

करिया मुंडा रिपोर्ट, 2000 के अनुसार 18 उच्च न्यायालयों में से 16 उच्च न्यायालय, कर्मचारियों की भर्ती में अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षण के नियमों का एक सीमा तक अनुपालन करते हैं और वह भी उनके अपने मानदंडों के अनुसार, जो न्यायालय से न्यायालय तक अलग-अलग होते हैं । बम्बई उच्च न्यायालय और दिल्ली उच्च न्यायालय पिछले 61 वर्षों से आरक्षण की नीति का अनुपालन नहीं कर रहे हैं । मद्रास और राजस्थान उच्च न्यायालयों में राजपत्रित और पदोन्नति पदों के मामले में अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों के लिए कोई आरक्षण नहीं है । इलाहाबाद, आन्ध्र प्रदेश, केरल, पंजाब एवं हरियाणा, पटना और मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय पदोन्नति में आरक्षण के प्रावधानों का अनुपालन नहीं करते हैं । आश्चर्य है कि विभिन्न उच्च न्यायालयों के संस्थापनों में आरक्षणों के संबंध में उनके द्वारा अनुवर्तित विषम नीति के मामले पर मुख्य न्यायाधीशों की आवधिक कान्फ्रेंस में विचार-विमर्श नहीं किया गया है । विधि मंत्रालय भी इस मामले में सरोकार महसूस नहीं करता है । न्यायपालिका के संबंध में यह एक कष्टदायी टीका-टिप्पणी है जिससे कमजोर वर्गों के लिए आरक्षण सहित संवैधानिक कार्य के निरीक्षण की आशा की जाती है ।

करिया मुंडा रिपोर्ट के अनुसार दिनांक 1-1-1993 को स्थिति के अनुसार प्राप्त पद, 18 उच्च न्यायालयों में से 12 न्यायालयों में अनुसूचित जाति का एक भी न्यायाधीश नहीं है । चौदह उच्च न्यायालयों में अनुसूचित जनजाति का कोई न्यायाधीश नहीं है । इसके अतिरिक्त, रिपोर्ट में यह भी उल्लेख है कि दिनांक 1-5-1998 के अनुसार 481 उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की कुल पद संख्या में से केवल 15 न्यायाधीश अनुसूचित जाति के और 5 अनुसूचित जनजाति के हैं । उच्चतम न्यायालय के मामले में, जिसे उच्च न्यायालयों के लिए एक आदर्श होना चाहिए, में अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के न्यायाधीशों की संख्या शून्य है ।

वर्ष 2011 में आज भी सभी 21 उच्च न्यायालयों में कुल 850 जजों में से केवल 24 जज अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के हैं परन्तु 21 उच्च न्यायालयों में से

14 उच्च न्यायालयों में अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति का कोई भी जज नहीं है । इसी प्रकार, उच्चतम न्यायालय में अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति का एक भी न्यायाधीश नहीं है जिसमें न्यायाधीशों की पद-संख्या 31 है ।

इन सबसे ऊपर, गृह मंत्रालय के सुझाव के बावजूद भी उच्चतम न्यायालय में अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षण हेतु उपयुक्त भर्ती नियम बनाने के अब तक कोई प्रयास नहीं किए गए हैं । खेद है कि पिछले 61 वर्षों के दौरान संहिताबद्ध भर्ती नियमों को अन्तिम रूप नहीं दिया गया है । न्यायाधीश, संविधान और देश के कानून को बनाए रखने की शपथ लेते हैं परन्तु माननीय उच्चतम न्यायालय भी अनुच्छेद 16(4) और 16(4क) के अन्तर्गत संवैधानिक प्रावधान का अनुपालन करने में असफल रहा है । 1950 से आगे अनुसूचित जाति के केवल 4 उम्मीदवार अर्थात् श्री के. रामास्वामी, श्री के.जी. बालकृष्णन, श्री बी.सी. रे और श्री ए. वर्दराजन पर उच्चतम न्यायालय में नियुक्ति के लिए विचार किया गया ।

हमारी स्वतंत्रता के 60 वर्षों के बाद भी यदि पर्याप्त प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं किया जा सका तो यह सही समय है कि उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों में पिछड़े वर्गों का प्रतिनिधित्व और ऐसे आरक्षण के लिए सुस्पष्ट प्रावधान किए जाएं ।

न्यायाधीशों की वर्तमान नियुक्ति प्रणाली अस्पष्ट और मनमानी है । श्री पी. शिवशंकर, श्री बी. शंकरानन्द और श्री एच.आर. भारद्वाज ने भारत के कानून मंत्री के रूप में उनके कार्यकाल के दौरान संबंधित उच्च न्यायालयों के माननीय मुख्य न्यायाधीशों को पत्र लिखे थे जिनमें उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के रूप में नियुक्ति के लिए अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति/अन्य पिछड़े वर्ग, महिलाओं और अल्पसंख्यकों के नामों की सिफारिश की गई थी । इसके बावजूद, इन श्रेणियों के न्यायाधीशों की संख्या आज तक नगण्य है ।

राष्ट्रीय आयोगों, विभिन्न राज्य आयोगों, अधिकरणों, उपभोक्ता अदालतों और विनियामक प्राधिकरणों, जिनकी संख्या देश भर में अच्छी-खासी है, में भी नियुक्तियों के लिए न्यायालयों को अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों और पिछड़ों से कोई उपयुक्त उम्मीदवार नहीं मिलते हैं । उल्लेखनीय है कि ऐसी अनेक अदालतों में महिला सदस्य की नियुक्ति अनिवार्य है परन्तु अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों और पिछड़ों के संबंध में कोई ऐसा कोई प्रावधान विद्यमान नहीं है ।

आयकर अपीलीय अधिकरणों में अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षण है परन्तु रिक्तियों को आमतौर पर भरा नहीं जाता है । चालू वर्ष 2011 में एक भी रिक्ति नहीं भरी गई है।

दुर्भाग्य से न्यायाधीशों की यह धारणा कभी नहीं रही कि वे सामाजिक बदलाव लाने कीं संवैधानिक बाध्यताओं और आरक्षण की आवश्यकता के बारे में चिंतित हैं । न्यायालयों को अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के अधिकारों की सुरक्षा के लिए रिट और निर्देश जारी करने की शक्ति है परन्तु बिरले ही यह आह्वान किया गया होगा कि इन लोगों को न्याय सुनिश्चित किया जाए । उच्चतम न्यायालय ने दिनांक 4 जून, 2011 को दिल्ली के रामलीला मैदान में बाबा रामदेव और उसके अनुयायियों के खिलाफ पुलिस कार्रवाई का अपनी ओर से संज्ञान लिया जिसमें कोई अपघटन नहीं था । न्यायालयों द्वारा अपनी ओर से ऐसी कार्रवाईयांअन्य मामलों में भी की जाती हैं । दूसरी ओर देशभर में अनुसूचित जातियों के सामाजिक बहिष्कार या अत्याचार के अन्य मामले तथा हत्याओं के इतने अधिक मामले हैं परन्तु उच्च न्यायालयों/उच्चतम न्यायालय ने ऐसे मामलों में अपनी ओर से कोई कार्रवाई नहीं की है ।

चूंकि, उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय भारत की संचित निधि से वेतन प्राप्त करते हैं । अतः उन्हें विभिन्न स्तरों पर भर्ती/पदोन्नतियों में अपेक्षित आरक्षण कार्यान्वित करने तथा संवैधानिक प्रावधानों का अनुपालन करना होता है । न्यायाधीशों

की नियुक्ति में इन न्यायालयों द्वारा अनुवर्तित प्रक्रिया वांछनीय होती हैं जहां तक पारदर्शिता का संबंध है जो समय की मांग है । जज की नियुक्ति के लिए अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति उम्मीदवारों को अस्वीकरण के कोई कारण नहीं दिए जाते हैं जब उनके नाम पर दुर्बल से दुर्बलतम मामलों में विचार किया जाता है । जजों की नियुक्ति की शक्ति से कार्यपालिका के वंचित होने के बाद कोई जवाबदेही नहीं है सिर्फ पारदर्शिता है । इसके परिणामस्वरूप, अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़े वर्गों का प्रतिनिधित्व त्वरित गति से ह्रास हुआ है जबकि द्वितीय जजों के मामले में जजों के पद पर चयन के लिए अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़े वर्गों के दावों पर विचार करने के लिए विधि मंत्रालय द्वारा जारी परिपत्रों की वैधता को माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा अनुमोदित कर दिया गया था ।

उच्चतम न्यायालय एडवोकेट्स - ऑन -रिकॉर्ड एसोसिएशन एवं अन्य बनाम भारत संघ के मामले में माननीय न्यायमूर्ति पांडियन ने डॉ. बी.आर. अम्बेडकर का उद्धरण देते हुए यह टिप्पणी की कि उच्च न्यायपालिका में प्रवेश विशेषाधिकृत वर्ग का विशिष्ट प्राधिकार नहीं है । यह न तो किसी की विरासत है और न ही संरक्षण का कोई मामला ।

न्यायमूर्ति एम.एन. वेंकटेचलैया, भारत के पूर्व मुख्य न्यायाधीश की अध्यक्षता में राष्ट्रीय संविधान समीक्षा आयोग ने माना कि "शिक्षा की प्रगति के 50 वर्षों में प्रत्येक राज्य में अनुसूचित जाति/ अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़े वर्गों के ऐसे व्यक्तियों की संख्या में पर्याप्त लेकिन धीमी गति से वृद्धि हुई जिनमें निष्ठा, चरित्र एवं कुसाग्र बुद्धि होते हुए उनके पास अपेक्षित अर्हताएं जो उच्च न्यायपालिका जज के रूप में नियुक्ति के लिए उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय के जजों के लिए अपेक्षित है ।"

उच्चतम न्यायालय का 1993 का निर्णय, स्पष्ट करता है कि "आज भी ऐसी शिकायतें हैं कि एक ही परिवार या जाति, समुदाय या धर्म से पीढ़ी दर पीढ़ी को जजों के रूप में नियुक्त, दीक्षित तथा प्रायोजित किया जाता रहा है, जिससे "न्यायिक संबंध सिद्धान्त" का सृजन हुआ है । हमारी लोकतांत्रिक व्यवस्था को किसी कुलीन तंत्र के लिए नहीं बल्कि देश के सभी लोगों के लिए कायम रखना है ।

अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के कल्याण संबंधी समिति की दूसरी रिपोर्ट, न्याय मंत्रालय, समिति के अध्यक्ष के रूप में श्री करिया मुंडा, संसद सदस्य द्वारा प्रवर्तक, जो दिनांक 15-3-2000 को लोकसभा में प्रस्तुत की गई थी, उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय में अनुसूचित जाति/ अनुसूचित जनजाति के लिए आरक्षण लागू करने के लिए संविधान के संशोधन का पर्याप्त आधार देती है । यह एक प्रामाणिक डेटा सहित शोधित रिपोर्ट है । इसमें भा.प्र.से. के पैटर्न पर एक अखिल भारतीय न्यायिक सेवा तथा राष्ट्रीय न्यायिक आयोग का गठन करने का सुझाव दिया गया है जिसमें उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय के जजों की नियुक्ति, स्थानान्तरण और स्थापन संबंधी मामलों को निपटाने के लिए अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़ा वर्ग का एक-एक सदस्य सम्मिलित होगा । इस पर गम्भीरता के साथ विचार किए जाने की आवश्यकता है । वस्तुतः अनुच्छेद, 312 में, एक अखिल भारतीय न्यायिक सेवा के सृजन की संभावना को पहले ही निर्दिष्ट कर दिया गया है, परन्तु इस धारणा को पिछले 35 वर्षों के दौरान आगे बढ़ावा नहीं दिया गया है ।

न्यायपालिका ही एक ऐसी सेवा है जो राष्ट्रीय सेवा पर गौरव नहीं करती । उच्चतम न्यायालय ने वर्ष 1992, 1993, 1994 में यह निर्देश दिया है कि भारत संघ, "अखिल भारतीय न्यायिक सेवा स्थापित करेगा" । नब्बे की शुरुआत में कम से कम दो निर्णय दिए गए । उच्चतम न्यायालय ने "अखिल भारतीय न्यायिक सेवा" के गठन के लिए निर्देश जारी किए हैं । पहले, आठवें और ग्यारहवें विधि आयोगों तथा कार्मिक, लोक शिकायत, विधि एवं न्याय पर विभाग संबंधी संसदीय स्थायी समिति में भी

"अखिल भारतीय न्यायिक सेवा" के गठन की सिफारिश की गई है । हाल ही में, राज्य सभा में एक प्रश्न के उत्तर में माननीय विधि मंत्री, श्री एम. विरप्पा मोइली ने बताया कि अक्तूबर, 2011 में आयोजित एक राष्ट्रीय परामर्श, जिसमें भारत के मुख्य न्यायाधीश, उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश और सभी उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीशों ने भाग लिया जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह कृत संकल्प किया गया कि जजों का श्रेष्ठ संभावित चयन सुनिश्चित करते हुए एक खुली प्रतिस्पर्धात्मक परीक्षा के माध्यम से "अखिल भारतीय न्यायिक सेवा" का गठन किया जाए ।

आश्चर्य है कि इसे क्या माना जाए केवल एक घटता कदम, उच्चतम न्यायालय ने राष्ट्रीय प्राधिकरण में अपर सत्र एवं उससे ऊपर के स्तर के न्यायाधीशों के 25 प्रतिशत पदों की भर्ती करने की संभावना पर उच्च न्यायालय से राय मांगी है । चौदह उच्च न्यायालयों में से राजस्थान और पटना उच्च न्यायालय इससे सहमत हैं । हिमाचल प्रदेश और आन्ध्र प्रदेश न्यायालयों ने अपनी राय नहीं दी है । दिल्ली उच्च न्यायालय ने मुद्दों पर आरक्षण की अभिव्यक्ति की है परन्तु कोई राय नहीं दी । सिक्किम, इलाहाबाद, झारखण्ड, गुजरात, मध्य प्रदेश, मद्रास, केरल, उत्तराखंड और बम्बई ने प्रस्ताव का विरोध किया है ।

परन्तु लाखों डॉलर का प्रश्न है कि उच्च न्यायालयों की राय लेने की क्या आवश्यकता है । यह संसद और उच्चतम न्यायालय के उपहास के अलावा कुछ नहीं है क्योंकि उच्च न्यायालय, उच्चतम न्यायालय एवं संसद से ऊपर नहीं हैं ।

प्रतिभागितात्मक लोकतंत्र में न्यायिक व्यवस्था में अनुसूचित जाति/अनुसूचित जाति और अन्य पिछड़े वर्ग की भागीदारी सुनिश्चित करनी होगी । ई.एम. सुदर्शन नेचिपम समिति ने भी अब इस मुद्दे पर विस्तार से विचार किया है और उच्च न्यायपालिका में अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़े वर्ग के लिए आरक्षण की निरपेक्ष रूप से सिफारिश की है । करिया मुंडा और नेचिपम समिति की

रिपोर्टों के कार्यान्वयन की बजाय सरकार ने उच्चतम न्यायालय के जजों की मद संख्या बढ़ा कर 31 कर दी है जबकि अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़े वर्गों के दावों की अनदेखी की गई है । सरकार को अतिरिक्त पदों के सृजन और रिक्त पदों पर नियुक्ति देकर श्रेय तथा सदभावना दिखाते हुए इन वर्गों को आश्वस्त करना होगा ।

यदि अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के कल्याण संबंधी समिति के अध्यक्ष के रूप में श्री करिया मुंडा ने रिपोर्ट 11 वर्ष पहले प्रस्तुत कर दी होती तो न्याय प्रदान करने के मामले में विस्तृत सुधार हो गया होता ।

वर्तमान आरक्षण मुक्त न्यायिक प्रणाली संतोषजनक सिद्ध नहीं हुई जिसे न्याय प्रदान करने की परिस्थिति से आंका जा सकता हो । न्यायमूर्ति पी.वी सावंत ने मंडल मामले के निर्णय में टिप्पणी की कि समाज का एक छोटा समूह, जो हमारी कुल जनसंख्या का लगभग 10 प्रतिशत है, जीवन के सभी पहलुओं, अधिकांशतः जो उनके हित के अनुकूल हो, का संचालन और उन्हें सुव्यवस्थित करता है । इसके परिणामस्वरूप, एक चुनिन्दा सामाजिक समूह के हाथों में सत्ता का संकेन्द्रिकरण हो गया है । न्यायपालिका की वर्तमान व्यवस्था पिछड़े वर्गों के मामले में उदासीन है ।

अनुच्छेद 229 के अनुसार अधिकारियों और कर्मचारियों की नियुक्ति के मामले में उच्च न्यायालय अपने को "राज्य" के रूप में मानता है । तर्क यह है कि उच्च न्यायालय अनुच्छेद 12 की परिभाषा में "राज्य" की श्रेणी में आते हैं । अतः अनुच्छेद 15(4), 16(4) और 16(4क) स्वतः न्यायपालिका पर लागू हैं ।

इसके परिणामस्वरूप, आरक्षण नीति भारतीय संविधान के अनुच्छेद 15(4), 16(4) और 16(4क) तथा अनुच्छेद 335 में यथा विचारित उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के जजों पर लागू होती है। अनुच्छेद 229 और 146 में, यदि आवश्यक हो,

उपयुक्त संशोधन किया जा सकता है । चूंकि जजों की नियुक्ति और चयन प्रक्रिया विधानपालिका और कार्यपालिका के विपरीत स्पष्ट नहीं है । अत: अनुच्छेद 14 और 15(4) के अनुप्रयोग का स्पष्ट रूप से प्रावधान नहीं हो सका । इस तथ्य से अन्तर्निहित प्रक्रिया से इन वर्गों का "पर्याप्त प्रतिनिधित्व" नहीं लाया जा सका जिससे यह प्रदर्शित होता है कि वर्तमान अन्तर्निहित प्रक्रिया असफल रही है। यह किसी की सामान्य बौध का अतिवर्तन करता है कि संविधान के संरक्षक और कानून के व्याख्याकर्ता संवैधानिक निकाय में आरक्षण क्यों नहीं होना चाहिए जबकि ऐसा आरक्षण विधि निर्माताओं हेतु उपलब्ध है ।

उपर्युक्त के मद्देनज़र श्री करिया मुंडा की रिपोर्ट में यथा उल्लिखित विधि एवं न्याय मंत्रालय द्वारा लिया गया यह आधार तर्कसंगत नहीं है कि न्यायपालिका में आरक्षण का कोई विशिष्ट प्रावधान नहीं है । इसके अतिरिक्त, दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा लिया गया आधार स्वीकार्य नहीं है कि मुख्य न्यायाधीश ने उच्च न्यायालय में नियुक्तियों के मामले में शक्तियों को मुक्त रखा है और ऐसे कर्मचारी अनुच्छेद 309 के दायरे में नहीं आते हैं ।

उच्चतम न्यायालय ने आन्ध्र प्रदेश सरकार बनाम विजय कुमार - ए.आई.आर. 1995 के मामले में निर्णय दिया है कि अनुच्छेद 15(4), जो अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़े वर्गों से संबंधित है, अनुच्छेद 16(4) की अपेक्षा ज्यादा विस्तृत है और उसी अनुच्छेद का (अनुच्छेद 15(4) को अनुच्छेद 16(4), 124 और 217 के साथ सुसंगत रूप से पठन किया जाना होता है जो उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय के जजों की नियुक्ति का प्रावधान करता है विशेषकर, जब अनुच्छेद 124 और 217 अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़े वर्ग के लिए आरक्षण का विशिष्ट रूप से निषेध नहीं करते हैं । यह न्यायपालिका में आरक्षण का रास्ता तैयार करने के लिए अनिवार्य है ।

अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़े वर्गों के जजों की नियुक्ति से किसी भी तरह संविधान के मूल ढांचे में दखल नहीं होगा क्योंकि वे भी सामान्य श्रेणी के नियुक्त अन्य जजों की तरह स्वतंत्र जज होंगे । अतः यह समझना गलत होगा कि उच्च न्यायपालिका में अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण प्रदान करने से संविधान का मूल ढांचे में विघ्न पैदा होगा । न्याय व्यवस्था उच्च न्यायपालिका में जजों की नियुक्ति से भिन्न है ।

व्यवस्था के कथित प्रबंधकों के अहम को संतुष्ट करने के लिए ही उनके इस असंगत तर्क को हम स्वीकार करते हैं कि न्यायपालिका को स्वतंत्र रखने के लिए इसे आरक्षण से मुक्त करना होगा । परन्तु उसी समय उनकी ओर से जजों के रूप में नियुक्ति के लिए अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति एडवोकेट्स के नामों की सिफारिश नहीं करने के कारण स्पष्ट करना अनिवार्य हो जाता है क्योंकि जजों के रूप में 67 प्रतिशत जज अधिवक्ताओं में से नियुक्त किए जा रहे हैं वह भी बिना किसी प्रतिस्पर्धात्मक परीक्षा के संबंधित उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की साधारण सिफारिश के माध्यम से ही । यदि एडवोकेट कोटा के जजों की नियुक्ति से संबंधित आंकड़े परिचालित किए जाते हैं तो सही तस्वीर और व्यवस्था के भेदभावपूर्ण कार्य संदेह से परे सिद्ध हो जाते हैं क्योंकि यह व्यवस्था अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति को एक प्रतिशत भी प्रतिनिधित्व प्रदान नहीं करती है ।

न्यायपालिका में अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के उपयुक्त आरक्षण उसी रूप में कायम रखने के लिए एडवोकेट कोटा से जजों की नई नियुक्तियां और सभी रिक्तियों को आरक्षित श्रेणी के उम्मीदवारों से भरना होगा और यह तब तक जारी रहना चाहिए जब तक 22.5 प्रतिशत प्रतिनिधित्व पूर्ण रूप से हासिल न हो जाए ।

हमारा संविधान एक गुटनिरपेक्ष राष्ट्रीय चार्टर नहीं है । यह सामाजिक क्रान्ति का एक दस्तावेज है जो न्यायपालिका सहित प्रत्येक परिकरण पर बाध्यता की व्यवस्था

करता है जो एक नए मानवीय सामाजिक व्यवस्था में यथापूर्व स्थिति को परिवर्तित करने के लिए राज्य की 3 शाखाओं में से एक है जिसमें सभी के लिए समान अवसर एवं हैसियत होगी । न्यायपालिका एक अधिनिर्णायक के रूप में समर्थ नहीं हो सकती परन्तु इसे सामाजिक-आर्थिक न्याय के लक्ष्य में कार्यात्मक रूप से संलिप्त होना होगा ।

अधीनस्थ और उच्च न्यायपालिका में जजों का आरक्षण :-

अधीनस्थ न्यायपालिका :-

- कुछ राज्यों में जिला जज के पद के लिए तथा सभी राज्यों में जिला जजों के पदों को छोड़कर, आरक्षण लागू है ।
- संविधान के अनुच्छेद 233 के अन्तर्गत कोई व्यक्ति जिसके पास एक एडवोकेट या प्लीडर के रूप में 7 वर्ष का अनुभव है वह उच्च न्यायालय की सिफारिशों के अधीन जिला जज के रूप में नियुक्ति के लिए पात्र है ।
- संविधान के अनुच्छेद 234 के अन्तर्गत जिला जज के पद को छोड़कर, नियुक्ति राज्य के राज्यपाल द्वारा राज्य लोक सेवा आयोग और संबंधित उच्च न्यायालय से परामर्श करके उसके द्वारा बनाए गए नियमों के अनुसार की जाती है ।

उच्च न्यायालय :-

संविधान के अनुच्छेद 217 के अन्तर्गत कोई व्यक्ति जिसने किसी न्यायिक कार्यालय में कम से कम 10 वर्ष तक कार्य किया हो और कोई व्यक्ति कम से कम 10 वर्ष तक एक उच्च न्यायालय में एडवोकेट रहा हो, वह उच्च न्यायालय के जज के रूप में नियुक्ति के लिए पात्र है ।

आरक्षण का कोई प्रावधान नहीं है । इसका प्रावधान एक संवैधानिक संशोधन करके करना होगा ।

उच्चतम न्यायालय :-

संविधान के अनुच्छेद 124 के अन्तर्गत कोई व्यक्ति जो कम से कम 5 वर्ष तक उच्च न्यायालय में जज रहा हो, कोई व्यक्ति जो कम से कम 10 वर्ष तक उच्च न्यायालय में एडवोकेट रहा हो तथा कोई व्यक्ति जो भारत के राष्ट्रपति की राय में ख्याति प्राप्त विधिवेता हो, उच्चतम न्यायालय के रूप में नियुक्ति के लिए पात्र है ।

सभी स्तरों पर जजों की नियुक्ति में अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के सदस्यों को आरक्षण का प्रावधान करने के लिए संविधान में उपयुक्त संशोधन किया जाना चाहिए ।

वर्ष 1993 तक कार्यपालिका भारत के मुख्य न्यायाधीश तथा संबंधित न्यायालय के मुख्य न्यायाधीशों के परामर्श से जजों की नियुक्तियों की शक्ति का प्रयोग करती थी तथा उसके पास सिफारिशों को स्वीकार या अस्वीकार करने की शक्ति थी । वर्ष 1994 में, उच्चतम न्यायालय (संदर्भ द्वितीय जज मामला) ने कार्यपालिका से उच्च न्यायालय जजों की नियुक्ति की शक्ति छीन कर उसे भारत के मुख्य न्यायाधीश को प्रदत्त कर दिया गया जिसने एक कालिजियम का गठन करके अपने दो वरिष्ठ न्यायाधीशों से परामर्श करना होता था । उच्चतम न्यायालय और किसी उच्च न्यायालय के किसी जज की नियुक्ति नहीं की जा सकती है जब तक यह भारत के मुख्य न्यायाधीश की राय के अनुसार न हो, जिसकी प्रकृति निर्धारक है । उच्चतम न्यायालय नियुक्ति के मामले में कालिजियम की पद-संख्या अब भारत के मुख्य न्यायाधीश सहित बढ़ाकर 5 तक कर दी गई है ।

कालिजियम एक अतिरिक्त संवैधानिक प्राधिकरण है जिसकी संकल्पना न्यायमूर्ति जे.एस. वर्मा और उसके सहयोगियों द्वारा उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय में जजों की नियुक्ति करने के लिए की गई थी । संविधान द्वारा या संविधान के जनक द्वारा इस पर कभी विचार नहीं किया गया था ।

नियुक्तियों के मामले में कोई विशिष्ट और प्रवर्तनीय सांविधिक मार्गदर्शी सिद्धान्त नहीं हैं जिनका अनुपालन किया जाना हो । नियुक्तियां करने के लिए स्वयं उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रतिपादित मार्गदर्शी सिद्धान्तों की प्रायः उनके कृपा पात्रों को नियुक्त करने के लिए सुविधाजनक बनाने की व्याख्या की जाती है । इस प्रकार अनेक मेधावी उम्मीदवारों के दावों को विफल कर दिया जाता है । अमेरिका के विपरीत कालिजियम के सदस्यों की ओर से पारदर्शिता और जवाबदेही का पूर्ण अभाव है, जहां जजों की नियुक्ति के मामले में सम्पूर्ण पारदर्शिता है । इसके अतिरिक्त, इस प्रकार की गई नियुक्ति कानून के न्यायालय में न्यायसंगत नहीं है । यद्यपि, नियुक्तियां करना एक प्रशासनिक कार्रवाई भी है परन्तु उपर्युक्त को न्यायालय के अवमान अधिनियम के दायरे से बाहर नहीं रखा गया है । अतः, इस प्रकार की गई नियुक्तियों के बारे में कोई प्रश्न नहीं किया जा सकता है ।

लगभग 67% नियुक्तियां न्यायालयों में प्रेक्टिस कर रहे अधिवक्ताओं में से की जाती हैं । पिछले 6 दशकों में की गई नियुक्तियों का एक विश्लेषण यह दर्शाता है कि नियुक्तियां समाज के विशेषाधिकृत वर्गों के बीच कुछ ही परिवारों के इर्द-गिर्द घूमती जाती हैं, जो देश की जनसंख्या का 1% भी नहीं है । वंशानुगत प्रणाली को स्थायी बनाने के लिए जो अकाकस व्यवस्था के सदृश है । जजों की विमुक्ति तथा परिवारों के व्यक्तियों का करिअर, ग्राम अधिकारी जो पहले ही उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय में पद धारण किए हुए हैं, को बहुत पहले से ही बहुत ही ध्यानपूर्वक विकसित किया जा रहा है ।

उत्तर भारत में, इन विशेषाधिकृत वर्गों के एडवोकेट उनकी 40 वर्ष की आयु में उच्च न्यायालयों में नियुक्त किए जाते हैं । उनका मुख्य लक्ष्य उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश/न्यायाधीश बनना है । आवश्यक वातावरण बनाने के लिए निर्णयों इत्यादि में उनकी प्रशंसा की जाती है जब वे न्यायालयों में नियुक्ति से पहले एक वकील के रूप में कार्य कर रहे हैं । कमजोर वर्गों से जजों की नियुक्ति उनके 50 वर्ष की आयु

में निरपवाद रूप से की जाती है और इस प्रकार उन्हें वरिष्ठता की विचारण से बाहर रखा जाता है जिसे मेरिट सहित नियुक्तियों के पीछे सिद्धान्त के रूप में प्रस्तुत किया गया था । किसी व्यक्ति की मेरिट का मूल्यांकन करने के लिए कोई परीक्षा आयोजित नहीं की जाती और संबंधित न्यायाधीश की सिफारिश पर नियुक्तियां कर दी जाती हैं । कार्यपालिका और न्यायपालिका दोनों की सत्ता में लोगों के परिचितों को इस व्यवसाय में उनके प्रवेश के बाद तत्काल सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में विधि अधिकारी/विधि सलाहकार के रूप में नियुक्त कर दिया जाता है और उसके बाद उन्हें उच्च न्यायालय के जजों के रूप में नियुक्त किया जाता है यद्यपि उन्होंने कभी भी एडवोकेट के रूप में प्रैक्टिस नहीं की ।

उपर्युक्त तथ्यों से प्रदर्शित होता है कि विभिन्न पद्धतियों को अपनाकर जिनके द्वारा देश में सामाजिक परिवर्तन की अनुमति नहीं देते हुए, उच्चतम न्यायालय में आने के लिए कमजोर वर्गों के जजों को निहित स्वार्थ की अनुमति नहीं है । संवैधानिक लक्ष्यों को वास्तविकता में बदलने के लिए तथा जनता के निम्नतर स्तर के लिए प्रणाली का विस्तार करने के लिए समाज के निम्नतर स्तर के व्यक्तियों को उच्च न्यायपालिका में स्थान मिलना चाहिए । अतएव, उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय में न्यायाधीशों की नियुक्ति के मामले में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़े वर्ग के लिए आरक्षण प्रदान करने के लिए केन्द्रीय सरकार से पुरजोर आग्रह किया जाता है ।

सिफारिशें :–

1. केशवानन्द भारती मामले में पृष्ठ 830 (1973 सुप्प. एससीआरआई) न्यायमूर्ति द्वारा यथा निर्धारित संविधान ने अनुच्छेद 12 की परिभाषा में उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों को "राज्य" माना जाए ।

2. उच्च न्यायालयों में नियुक्ति करने के लिए एक राष्ट्रीय न्यायिक आयोग का

गठन किया जाना चाहिए जिसमें अन्य बातों के साथ अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग तथा अल्पसंख्यक श्रेणी का एक-एक सदस्य हो । इसके अलावा विधि मंत्री, भारत का मुख्य न्यायाधीश और विधिक पृष्ठभूमि का एक प्रतिष्ठित व्यक्ति उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय का सेवानिवृत्त न्यायाधीश नहीं – संसद के दोनों सदनों के प्रतिपक्ष के नेताओं के परामर्श से भारत के राष्ट्रपति द्वारा नामित हो, को उपर्युक्त आयोग में शामिल किया जाए । उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय में जजों की नियुक्ति में राष्ट्रीय अनुसूचित जाति के अध्यक्ष, राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति के अध्यक्ष तथा राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग के अध्यक्ष और राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग के अध्यक्ष से परामर्श किया जाना चाहिए । कालिजियम के माध्यम से भारत के मुख्य न्यायाधीश और उसके दो सहयोगियों को प्रदान की गई प्रमुखता को एक प्रावधान के साथ प्रतिस्थापित किया जाए कि जहां भारत का मुख्य न्यायाधीश अपने सहयोगियों से परामर्श कर सकता है, वे राष्ट्रीय न्यायिक आयोग के सदस्य नहीं होंगे । अतिरिक्त संवैधानिक प्राधिकरण होने के नाते, उपर्युक्त **कालिजियम** को एक उपयुक्त विधान लाकर समाप्त कर दिया जाना चाहिए । उच्चतम न्यायालय को कानून को गिराने का अवसर नहीं दिया जाना । उच्च न्यायालयों द्वारा न्यायिक समीक्षा में भारत के संविधान में IXवीं अनुसूची को इससे अलग रखते हुए विधान में शामिल किया जाए ।

उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय में नियुक्तियां करते समय राष्ट्रीय न्यायिक आयोग को यह ध्यान रखना होगा और देखना होगा कि न्यूनतम 49.5% आरक्षण अर्थात् अन्य पिछड़ा वर्ग को 27%, अनुसूचित जाति को 15% तथा अनुसूचित जनजाति को 7.5% न्यूनतम आरक्षण का अनुपालन किया जाता है ।

नई नियुक्तियों की शुरुआत अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति से की जानी चाहिए (50% की सीमा तक) और यह तब तक चलती रहे जब तक अनुसूचित

जाति/अनुसूचित जनजाति के लिए 22.5% आरक्षण हासिल हो जाए ।

पारदर्शिता सुनिश्चित करने की दृष्टि से आवेदन खुली प्रेस विज्ञापनों के माध्यम से आमंत्रित किए जाएं और अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति तथा अन्य पिछड़े वर्ग में से उपयुक्त एडवोकेट्स-इन-प्रेक्टिस की पहचान करने के लिए उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालयों द्वारा जांच समितियों का गठन किया जाए ।

इसी प्रकार, उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय में नियुक्ति के लिएअनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के उपयुक्त उम्मीदवारों (न्यायिक अधिकारी) के नाम जिला न्यायालयों और उच्च न्यायालयों से लिए जाएं ।

उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय के जजों के रूप में नियुक्ति के लिए अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के व्यक्तियों को अन्तिम रूप से अस्वीकार करने से पहले उन्हें अस्वीकार करने के कारणों का रिकार्ड रखा जाए । निष्पक्षता सुनिश्चित करने के लिए ट्रीटमेंट टेस्ट संचालित किए जाने चाहिएं तथा साक्षात्कार की वीडियाग्राफी की जाए ।

3. जिला न्यायालयों में नियुक्ति के लिए भा.प्र.से. के समानान्तर एक अखिल भारतीय सेवा का सृजन किए जाने की आवश्यकता है जिसकी अनुच्छेद 312 के संबंध में संविधान की 42वें संशोधन के माध्यम से कल्पना की गई थी । न्यायपालिका और प्रथम, 8वें और 11वें विधि आयोगों ने भी ऐसे प्रस्ताव का समर्थन किया है । उच्चतम न्यायालय ने अखिल भारतीय न्यायिक सेवा का गठन करने के लिए कम से कम दो निर्णयों के माध्यम से निर्देश भी जारी किए हैं । आरक्षण सभी राज्यों में जिला जज के पद तक लागू की जानी चाहिए ।

4. जिला न्यायालयों, उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय में कर्मचारियों

और अधिकारियों की नियुक्ति के संबंध में उपयुक्त भर्ती नियम बनाए जाएं जो एकरूपता में सभी पर लागू हों तथा संविधान के अनुच्छेद 15(4), 16(4), (164क) का अनुसरण किया जाए । संविधान के अनुच्छेद 229 और 146 का उपयुक्त रूप से संशोधन किया जाए ।

5. आयोगों, अधिकरणों, विनियामक प्राधिकरणों और उपभोक्ता अदालतों में नियुक्तियों हेतु महिला सदस्य की नियुक्ति के लिए मौजूदा प्रावधान के समानान्तर अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति तथा अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए उपयुक्त प्रावधान किए जाएं ।

-x-x-x-x-